राजनीति विज्ञान में शोध परिदृश्य

शैफाली बार्थोनिया

सामाजिक परिवर्तन समाज की एक अनवरत् प्रक्रिया है जो समाज में निरंतर रूप से चलती है और चलनी चाहिए क्योंकि इसी के कारण कोई समाज या सभ्यता अपना विकास करते हैं। इस सामाजिक परिवर्तन को गतिशील करने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन ज्ञान का विकास है। ज्ञान का विकास सतत् शोध के अभाव में अधूरा है। अतः शोध ज्ञान के विकास की पूर्वशर्त है। 'शोध' शब्द का प्रयोग एक प्रकार से शुद्धि, संस्कार या संशोधन के अर्थ के रूप में किया जाता है। सामान्यता नवीन ज्ञान की दिशा में किया गया क्रमबद्ध प्रयास ही शोध कहलाता है। परंतु सामाजिक विज्ञानों में शोध शब्द का प्रयोग नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही नहीं किया जाता अपितु ज्ञान में वृद्धि के साथ-साथ इसमें किसी प्रकार का संशोधन करने या ज्ञान की पुर्नस्थापना

करने के रूप में भी किया जाता है।[1]

राजनीति विज्ञान में शोध का सम्बन्ध राजनीतिक विषयों एवं समस्याओं से सम्बन्धित है। जब व्यवस्थित ढंग एवं नियमित विधियों के द्वारा राजनीतिक घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है तो उसे 'राजनीतिक शोध' कहा जाता है। राजनीतिक शोध का उद्देश्य है नये तथ्यों की गन्वेषणा तथा पुराने तथ्यों की जांच एवं सत्यापन करना। ऐसे नवीन वैज्ञानिक उपकरणों, अवधारणाओं तथा सिद्धांतों का विकास करना जिनसे मानव व्यवहार का विश्वसनीय एवं प्रामाणिक अध्ययन सुगम हो।

भारत जैसे विकासशील, कल्याणकारी, धर्मनिरपेक्ष तथा समानतावादी देश के लिए शोध विशेष महत्त्व रखता है। देश की अनेक सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं के कारणों की जानकारी इस शोध के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। हालांकि भारत सहित दक्षिण एशियाई देशों में राजनीतिक शोध की स्थिति उत्साहवर्धक नहीं है। आज भी इन देशों में राजनीति विज्ञान को धर्म, नैतिकता और दर्शनशास्त्र के अधीन माना गया है। अधिकांशतया इन देशों की राजनीति का विश्लेषण विदेशी राजविज्ञानियों के द्वारा किया जाता है। भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में निर्धारित राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रमों से ज्ञात होता है कि उनमें वैज्ञानिक अध्ययन, पद्धतियों, शोध प्रविधियों आदि को नगण्य स्थान दिया गया।[2]

अनेक भारतीय एवं विदेशी विद्वानों की दृढ़ धारणा है कि वैज्ञानिक शोध प्रविधि जैसी कोई चीज नहीं है, न ही राजनीति को विज्ञान बनाया जा सकता है क्योंकि मनुष्य का स्वभाव तथा सामाजिक व राजनीतिक घटनाएं जटिल तथा अमूर्त होती है। उन्हें पूर्ण रूप से समझना कठिन होता है। मानवीय घटनाओं की जड़ में भावनाएं, विचार, आदर्श होते हैं तथा राजनीतिक घटनाएं, गुणात्मक तथा व्यक्तिनिष्ठ होती है। जार्ज ए. लुण्डबर्ग कहते हैं कि, "भौतिक तथ्य हमें अपनी इन्द्रियों से (आंख, कान, नाक, जीभ आदि) प्राप्त हो जाते हैं जबकि सामाजिक तथ्य हमें प्रतीकात्मक रूप से शब्दों से प्राप्त होते हैं जैसे लोककल्याणकारी, परम्पराएं, आचरण, मूल्य आदि। ये सभी व्यक्तिसापेक्ष शब्दों की शृंखला हैं।"[3] लुण्डबर्ग का यह कथन राजनीति विज्ञान में वस्तुनिष्ठता के अभाव की ओर इंगित करता है।

राजनीतिक घटनाएं प्रायः गतिशील प्रकृति की होती है और विकासशील समाजों में ये और भी अधिक परिवर्तनशील होती हैं। इसीलिए समाजविज्ञानों में सामान्यीकरण या सिद्धांत निर्माण काफी कठिन होता है। इनका संबंध मनुष्य की भावनाओं, आवेगों, मनोवृत्तियों, व्यवहारों, आदतों से है, अतः सामान्यीकरण की दिशा में और कठिनाई आती है।[4] मनुष्य अपने विवेक तथा इच्छाशक्ति से प्रेरित होने के कारण कतिपय वैज्ञानिक नियमों के अनुसार आचरण नहीं करता। उसका व्यवहार सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश तथा अमूर्त मूल्यों या भावनाओं से बंधा हुआ होता है। साथ ही वह सामाजिक बलों, अपने अनुभव, शिक्षण, प्रशिक्षण आदि के कारण बराबर सीखता रहता है तथा अपने व्यवहार में परिवर्तन कर सकता है। इसी कारण राजनीति विज्ञानी के अवलोकन एवं निष्कर्ष बदलते रहते हैं। मनुष्य संभावित परिणामों या पूर्वकथन का अनुमान करके भी अपने व्यवहार को परिवर्तित कर लेता है। परिवर्तनशीलता के होते हुए भी राजनीतिक घटनाओं में निश्चितता, क्रमबद्धता, नियमितता, जांचशीलता आदि विशेषता पाई जाती है। यद्यपि उनके आधार पर प्राकृतिक विज्ञानों की तरह पूर्व कथन नहीं किया जा सकता पर फिर भी सटीक संभावना तो बनाई ही जा सकती है। राजनीति वैज्ञानिक अपने पूर्वाग्रहों को नियंत्रित करके अपने अध्ययन में वस्तुनिष्ठता ला सकते हैं। ऐसे अनेक निष्कर्ष निकाले जा चुके हैं जहां ये निष्कर्ष कतिपय मूल्यों, आदर्शों एवं विचारों तथा उनको कार्य रूप में परिणित करने के साधनों और परिणामों से संबंधित हो सकते हैं। भले ही उसमें प्रयोगशालाओं की तरह नियन्त्रित प्रयोग न किए जा सकें, किंतु समाज, राज्य एवं सरकारें निरंतर राजनीतिक प्रकार के प्रयोग करती रहती हैं। लोकतंत्र, संघात्मक शासन, निर्वाचन की प्रणालियां

ऐसी ही खुली प्रयोगशालाएं हैं। हालांकि यह जिम्मेदारी शोधार्थी पर है कि वो सिद्धांत निर्माण या निष्कर्षों का लेखन करते वक्त यह सुनिश्चित कर लें कि उसके निष्कर्ष भ्रामक न हों। वह निष्कर्षों के साथ तथ्य संकलन की सम्पूर्ण पद्धति का ब्यौरा दें ताकि उनके आधार पर शोध निष्कर्षों की जांच की जा सकें।[5]

स्वाधीन भारत में राजनीति विज्ञान में शोध

अन्य समाजविज्ञानों जैसे अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, तथा मानवशास्त्र की तुलना में एक 'विज्ञान' कहा जाने वाला अनुशासन अर्थात् राजनीति विज्ञान काफी पिछड़ा है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद शोध कार्य का विस्तार किया गया और इस उद्देश्य से योजना आयोग, भारतीय कृषि संस्थान, भारतीय सामुदायिक विकास संस्थान, नेशनल सैम्पल सर्वे निदेशालय आदि संस्थाएं बहुत सा शोध करती व करवाती रही हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय समाज विज्ञान शोध परिषद्, विभिन्न विश्वविद्यालय, स्वतंत्र शोध संस्थान तथा राज्य सहायता प्राप्त संस्थाएं भी इस कार्य में लगी हैं। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है—टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस रिसर्च इंस्टीट्यूट, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन। कुछ गैर सरकारी एवं गैर राष्ट्रीय संस्थाएं भी सक्रिय हैं जैसे ब्रिटिश काउंसिल, अमेरिकन सेन्टर आदि। इतना होने पर फिर भी राजनीतिक शोध कतिपय पुस्तकालयी अध्ययन, ऐतिहासिक नायकों की आत्म कथाओं, राजनीतिक विचारकों पर बार-बार किये गये निरर्थक अध्ययनों, कुछ समाजशास्त्रीय केस स्टडीज या सर्वेक्षण पर आधारित शोध ही पाए जाते हैं। स्वाधीनता के बाद जिस प्रकार की आकांक्षाएं शोधार्थियों से की गयी उसे निश्चित तौर पर पूरा नहीं किया गया। अन्य समाजविज्ञानों की तरह, राजनीति विज्ञान में 'शोध के लिए शोध' किया जाता रहा है। चाहे स्त्री विमर्श हो या दलित विमर्श, पंचायती राज हो या अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, विचारक हो या विचारधाराएं अधिकांश शोधों की सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रासंगिकता बहुत आंशिक रही है।

अगर 'शोधगंगा' में 2013-14 में रजिस्टर किये गये शोध प्रबंधों पर गौर किया जाये तो मालूम होगा कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत रजिस्टर्ड सभी विषयों का संबंध किसी दूसरे देश की समस्या से है जिसकी राष्ट्रीय प्रासंगिकता है ही नहीं।[6] महिला व दलित विमर्श में दोनों समुदायों की कमजोर स्थिति का रूदन अधिक होता है सशक्तिकरण के दिशा में बढ़ने का शोध कम होता है। दलित विमर्श में व्यक्ति पूजा इस कदर हावी है कि कुछ व्यक्तित्वों के परे शोध करने का प्रयास ही नहीं किया जाता। आधुनिक भारत में दलित आरक्षण विषय पर शोध होना तो दूर, उस पर बात करना भी मुश्किल है।

यह सही है कि एक निर्धन देश का शोधक होने के नाते भारतीय शोधक के साधन बहुत सीमित हैं। वह अधिकांशतया राज्य की सहायता पर निर्भर करता है। शासकों की राजनीतिक प्रभावशक्ति के चलते वास्तविक शोध करना संभव नहीं हो पाता। इस वातावरण में शोध विषय के चयन से लेकर शोध निष्कर्षों के प्रकाशन तक में धन प्रदान करने वाली एजेन्सी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है।[7] अगर शोधार्थी अपने विषय के चुनाव में स्वायत्तता बरतता है और किसी ऐसे विषय का चुनाव करता है, जो शासक वर्ग की पसंद के अनुरूप न हो तो उसकी कानूनी, सामाजिक तथा भौतिक सुरक्षा की कोई माकूल व्यवस्था नहीं होती।

राजनीति विज्ञान में शोध की बेहतरी हेतु सुझाव

1. शोध के नवीन क्षेत्रों जैसे पर्यावरणीय राजनीति, गवर्नेंस, कट्टरपंथ एवं आतंकवाद पर नए परिप्रेक्ष्य से शोध, शरणार्थी समस्या, माइग्रेशन राजनीति, राजनीति का नया आर्थिक चेहरा (अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों की राजनीतिक भूमिका) सिविल सोसाइटी की भूमिका, बदले शक्ति ध्रुवीकरण में विश्व राजनीति आदि पर सार्थक शोध किए जाएं।

2. संपूर्ण भारत में होने वाले शोध का एक राष्ट्रीय

संस्था द्वारा शोध मूल्यांकन हो और शोध की निष्पक्ष ग्रेडिंग हो ताकि शोधार्थी उत्कृष्ट शोध के लिए प्रेरित हों।

3. बहुत से शोध विषयों का अत्याधिक दोहन हो चुका है उनमें शोध को हतोत्साहित किया जाए।

4. राष्ट्रीय शोध एजेंसियां शोध प्रोजेक्टों की बंदरबांट न कर उन्हें सीमित करें एवं उनसे होने वाले शोध कार्यों का कड़ा मूल्यांकन करें, ताकि वास्तविक शोधार्थी प्रोत्साहित हो।

5. देश में तेजी से खुल रहे निजी विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों ने भी शोध को अयोग्यों के लिए इतना सुलभ बना दिया है जिसने समस्त शोधार्थी को कटघरे में खड़ा कर दिया है।

भारत में ही नहीं दुनिया भर में राजनीति विज्ञान में शोध का राजनीतिकरण किया गया है। शासकों ने हर युग में उस शोध को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आगे बढ़ाया है जो उनकी विचारधारा के अनुकूल हो। जब राजनीति सभी को प्रभावित करती है तो यह आवश्यक है कि इस विषय को खुला और आम जनता की विषय बनाया जाए। 'राजनीति के विज्ञान' पर शासकों का एकाधिकार न रहे। सभी को उसकी निर्णय प्रक्रियाओं में भाग लेने तथा योगदान देने का अवसर दिया जाये। इस दुरूह कार्य को एक सच्चा राजनीति विज्ञानी ही कर पायेगा।

संदर्भ सूची

1. संजीव महाजन, **सामाजिक सर्वेक्षण एवं सांख्यिकी** (अर्जुन पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली) 2009, पृ. 63

2. एस.एल. वर्मा, **राजनीति विज्ञान में अनुसंधान** (राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी : जयपुर) 2005, पृ. 4

3. आर.के. वर्मा, **गोपाल वर्मा, रिसर्च मैथ्डोलॉजी** (कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स : न्यू देहली) 2010, पृ. 12

4. आर.एन. त्रिवेदी, डी.पी. शुक्ला, **रिसर्च मैथ्डोलॉजी** (कॉलेज बुक हाउस : जयपुर) 2008, पृ. 40

5. डी.ए.डी. वान्स, **सर्वे इन सोशल रिसर्च** (रावत पब्लिकेशन : दिल्ली) 2003, पृ. 65

6. 'शोधगंगा' एक साइट है जहां महत्त्वपूर्ण विश्व-विद्यालयों की पी.एच.डी. शोधप्रबंध पूरे देश के शोधार्थी के लिए ऑनलाइन उपलब्ध किए जाते हैं।

7. मिताली सचदेवा, **क्वालिटेटिव रिसर्च इन सोशल साइंस** (राज पब्लिशिंग हाउस : जयपुर) 2006, पृ. 65.